Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
15·3
KUS-A

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विषय संख्या
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
१५.२
२२
आगत पंजिका संख्या २५४६६
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय (विज्ञान विभाग)

विषय संख्या ९५.2
पुस्तक संख्या 2८
आगत पंजिका संख्या २५,466

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार R

१५/२
२८ 15.3

वर्ग संख्या . . . २८ . . .
आगत संख्या २५,४६६ . . KUS-A

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

१९८४-१९८५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

विश्वविद्यालय

... ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

'आर्यसमाज में मूर्त्तिपूजा' ध्वांत निवारण

महर्षि दयानन्द जी की पुण्य स्मृति में समर्पित

लेखक—

...क अनुसन्धान कर्त्ता शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक'
'सिद्धान्त शास्त्री', 'साहित्यालङ्कार'

प्रकाशक—

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

...० साहित्य रत्नालय, ... र प्रदेश)

सृष्टि संवत् १९७२९४९०५१... २००७ वि०

प्रथम संस्करण २०००] ... [मूल्य ।)

१५.२
२८

25477

COMPILED

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक—
वैदिक अनुसन्धान कर्त्ता
शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक'
'सिद्धान्त शास्त्री', 'साहित्यालङ्कार

ओ३म्
पुस्तक संख्या ९८.२/२८
पञ्जिका-संख्या २५८६६
पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई सज्जन पन्द्रह दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख सकते। अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

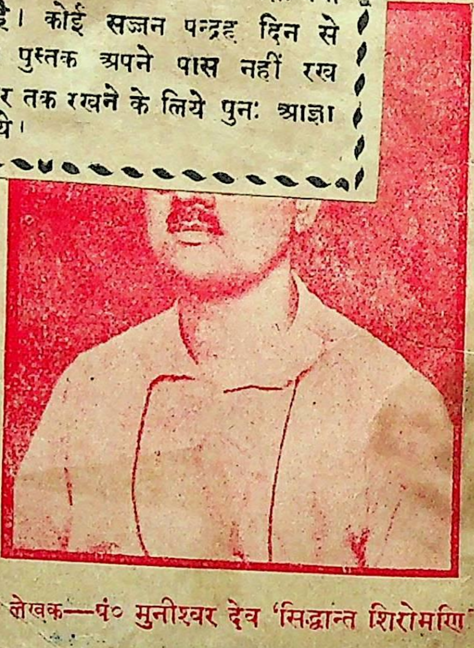

भूमिका लेखक—पं० मुनीश्वर देव 'सिद्धान्त शिरोमणि'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R15.3,KUS-A
25477

भूमिका

प्रिय पाठक महोदय !

आपके सन्मुख यह रुद्रग्रन्थ माला का सप्तम पुष्प रूप 'आर्य समाज में मूर्तिपूजा ध्वान्त निवारण' नामक पुस्तिका जो कि पौराणिक पंडित स्व० श्री कालूराम शास्त्री विरचित 'आर्य समाज में मूर्तिपूजा' का युक्तियुक्त उत्तर है, प्रस्तुत है। इसके लेखक आर्य जगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् व वैदिक अनुसन्धान कर्ता (वैदिक रिसर्च स्कालर) श्री पं० शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा 'पथिक' साहित्यालंकार, सिद्धान्त शास्त्री कानपुर हैं। आपके अनुपम अनुसन्धान के परिणाम स्वरूप अब तक दर्जनों पुस्तकें— महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्यानुशीलन, भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि, अथर्व वेद की प्राचीनता, आर्य समाज के द्वितीय नियम की व्याख्या, भारतीय इतिहास और वेद, ऋग्वेद के १०म. मण्डल पर पश्चिमीय विद्वानों का कुठाराघात, वामनावतार की कल्पना आदि वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में नक्षत्रवत् प्रकाशित होकर भारतीय विद्वन्मण्डल-गगन में चमक रही हैं। श्रीयुत कुशवाहा जी की उक्त सभी रचनाओं में आपको वेदोद्धारक वेद-व्याख्याता, वेदाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के प्रति अनुकरणीय भक्ति व श्रद्धा का प्रमाण पद २ पर मिलेगा। हमारे विचार में स्व० श्री पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ तथा स्व० महामहोपाध्याय श्री पं० आर्यमुनि जी के अनन्तर वर्तमान काल में यदि कोई वस्तुतः वेदानुसन्धान कर्ता है तो वे प्रशंसित श्री पं० शिवपूजनसिंह जी ही हैं।

पुस्तकालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य जगत् के स्वाध्याय शील सज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वे अधिकाधिक संख्या में इनकी पुस्तकों को मंगवा कर सर्व-साधारण में वितरण कर ऋषि ऋण से उऋण होने के हेतु वेद-प्रचार व वैदिक शिक्षा प्रसारार्थ श्री कुशवाहा जी का हाथ बंटावे तथा अपने आर्योचित कर्तव्य का पालन करें। यदि कोई आर्य दानवीर इनकी रचनाओं को अपनी ओर से अर्थ व्यय करके प्रकाशित करने में अपना सहयोग दे सके तो अत्युत्तम बात हो, क्योंकि श्री पं० शिवपूजनसिंह जी के पास इतना धन नहीं है कि वे लगातार अपनी ओर से धन खर्च कर इस प्रकार का उपयोगी एवं आवश्यक वैदिक साहित्य प्रकाशित कर दे सकें। यदि आर्य भाइयों ने उक्त प्रकार सहयोग देने में विलम्ब अथवा प्रमाद किया तो इसका परिणाम शुभ न निकलेगा और आर्य समाज के लिए यह एक दुर्भाग्य पूर्ण व दुःखद प्रसंग होगा कि अर्थाभाव के कारण इनकी अमुक २ रचनाएं प्रकाशित होने से रह गईं! क्या कोई दानवीर ऐसा निकलेगा जो कि कुशवाहा जी की नवीन रचना 'आर्य संस्कृति पर कुठाराघात' के प्रकाशनार्थ सारा व्यय उन्हें देने का संकल्प कर यश का भागी बने।

अन्त में हम श्री पं० शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा को उनके इस प्रशंसनीय प्रयास के लिये धन्यवाद देते हैं और प्रभु से उनके दीर्घायुष्य व आरोग्यता के लिये हार्दिक मंगल कामना करते हैं।

विनीत—

मुनीश्वरदेव सिद्धान्त शिरोमणि

महोपदेशक आ०प्र० सभा पंजाब

व सहायक स० 'आर्य' अम्बाला

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज में मूर्त्तिपूजा-ध्वांत निवारण

दिवंगत पं० कालू राम जी शास्त्री ने "आर्य समाज में मूर्तिपूजा" नामक २२ पृष्ठ की एक पुस्तिका लिखी है जो सन् १६३५ ई० में वी० एन० प्रेस इटावा में मुद्रित हो कर पं० कामता प्रसाद दीक्षित 'अमरौधा' (कानपुर) द्वारा प्रथम बार दो सहस्र प्रकाशित हुई है। इस पुस्तिका से साधारण जनता में भ्रम फैल सकता है इस लिए इस पर विचार करना अनिवार्य है। लेखक की विज्ञप्ति है "हम देखना चाहते हैं कि क्या भूतल पर कोई एक भी लिखा पढ़ा आर्य समाजी है या सब के सब मूर्ख? जिस आर्य समाजी को अपनी विद्या का घमण्ड हो वह इस पुस्तक का खण्डन करे, हमारे दिये प्रमाणों को काट कर जो दयानन्द के लेख का जवाब लिख वेद से मूर्तिपूजा का खण्डन सिद्ध करेगा उसको हम एक हजार रुपया इनाम देंगे। अब देखना है कि भारत जननी ने किसी आर्य समाजी में यह शक्ति दी है हमारी समझ में तो इस किताब को देख कर आर्य समाजी उसी प्रकार घरों में धसेंगे जैसे बिल्ली को देख चूहा बिल में धंसता है।"

पाठ वृन्द! इसी से लेखक के दम्भ का पता लगा सकते हैं। मुझे यह पता नहीं कि इस पुस्तिका का किसी आर्य समाजी ने उत्तर दिया है या नहीं मुझे अपनी विद्या का घमण्ड तो नहीं है पर मेरे उत्तर को पढ़ कर अवश्य पौराणिक वर्ग में खलबली मच जायगी।

आपने पृष्ठ १ से ६ तक आर्य समाज को कोषण किया है कि आर्य समाजी लिखने पढ़ने के परम शत्रु हैं, ये बिलकुल ही लिखते पढ़ते नहीं.....इत्यादि। इन व्यर्थ कोषण का उत्तर मैं नहीं दूंगा, बरन्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने जो ऋषि दयानन्द जी के लेखों से मूर्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है उसका समुचित उत्तर दूंगा।

आक्षेप—भोग लगाने में स्वामी जी की आज्ञा। सत्यार्थ प्रकाश बलिवैश्वदेव प्रकरण चतुर्थ समुल्लास में लिखा है "पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादिक्रमानुसार यथा क्रम इन मन्त्रों से भाग रखें। ओं सानुगायेन्द्राय नमः····· आर्य समाजी नित्य बलिवैश्वदेव करते हैं, इन्द्र, यम, वरुण को भोग लगाते हैं, फिर कहते हैं कि हम मूर्तिपूजा नहीं करते·····(देखो पृष्ठ ७ से ८)

उत्तर—आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जीवन पर्यन्त मूर्तिपूजा का खण्डन अपने प्रायः सभी ग्रन्थों, उपदेशों में किया और उन्हीं के लेखों से मूर्तिपूजा सिद्ध करना पठित जनता की आंख में धूली झोंकने के सिवाय और क्या है?

पञ्चमहायज्ञ में बलिवैश्वदेव से मूर्तिपूजा कदापि सिद्ध नहीं हो सकती है। ऋषि दयानन्द जी के लेख में कहीं भी 'भोग' शब्द नहीं है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में स्पष्ट लिखा है—"इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े, पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खे—ओं सानुगायेन्द्राय नमः—इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा दे अथवा अग्नि में छोड़ देवे।

इस से मूर्तिपूजा प्रमाणित करना साधारण जनता की आंख में धूलि झोंकना है।

आप अपनी पुस्तिका में लिखते हैं—"ओं वनस्पतिभ्यो नमः' यह मन्त्र पढ़ कर एक ग्रास अन्न का भोग ओखली मूसल को लगादे।"

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने 'ओखली मूसल' को भोग लगाने के लिए सत्यार्थ प्रकाश व संस्कार विधि में कहीं भी नहीं लिखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस असत्य लेख के लिए आप को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए था।

इन्हीं असत्य बातों से मूर्तिपूजा सिद्ध होगी ?

इन मन्त्रों में आपके कल्पित देवताओं के नाम नहीं हैं। इन मन्त्रों के अर्थ स्वयं ऋषि दयानन्द जी महाराज ने "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" "पञ्च महायज्ञ विषय" में किया है यथाः—

सर्वैश्वर्य युक्त परमेश्वर और उसके गुण, **सानुगइन्द्र,** शब्द से गृहीत होते हैं।

सत्य न्याय करने वाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय करने वाले सभासद् **'सानुगयम'** शब्द का अर्थ है।

विद्यादि उत्तम गुणों से युक्त सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त जन **'सानुगवरुण'** शब्द का अर्थ है।

पुण्यात्माओं को आनन्दित करने वाला परमात्मा और वे लोग **'सानुगसोम'** शब्द से कहे जाते हैं।

प्राण जिन के रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उन्हें **'मरुत्'** कहते हैं। उनकी रक्षा करनी चाहिए।

आप—सर्वव्यापक परमात्मा।

वनस्पति—ईश्वर के उत्पन्न किए हुए वायु और मेघ आदि सब के पालनार्थ सब पदार्थ तथा जिन से अधिक वर्षा और जिन के फलों से जगद् का उपकार होता है उनकी रक्षा करनी।

श्री—जो सेवा करने के योग्य परमात्मा है उसकी सेवा और पुरुषार्थ से राज्य श्री की प्राप्ति करने में सदा उद्योग करना चाहिए।

भद्रकाली—जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय लेना चाहिए।

ब्रह्मपति—जो वेद के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना विद्या के लिए करना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तुपति—जो गृह सम्बन्धी पदार्थों का पालन करने वाला अथवा सब भूतों के निवास आकाश का पति ईश्वर है।

आक्षेप—गिलोय के अर्क का भोग-स्वामी दयानन्द जी 'आर्याभिविनय' के मन्त्र ७ में लिखते हैं कि—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधि हवम् ॥ ७ ॥ ऋग्वेद।

.........स्वामी दयानन्द जी ने वेद मन्त्र को आगे रख निराकार ईश्वर को भक्ति पूर्वक गिलोय (गुर्च) के अर्क का भोग लगाना लिखा है। जब हम ठाकुर जी को भोग लगावें तब ये आर्यसमाजी इसको अवैदिक बतलाकर अनेक गालियां दें और आप निराकार को गुर्च का अर्क भर २ कर कटोरे पिला दें इस इन्साफ का कुछ ठिकाना है?

उत्तर—यहां कोष्ठ में (सर्वात्मा से पान करो) है इसी पर आक्षेप है। महर्षि दयानन्द जी ने अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है—

(दर्शत) हे ज्ञान से देखने योग्य (वायो) अनन्तबल युक्त सब के प्राण रूप अन्तर्यामी परमेश्वर आप हमारे हृदय में (आयाहि) प्रकाशित हूजिए कैसे आप हैं कि जिन्हों ने (इमे) इन प्रत्यक्ष (सोमाः) सांसारिक पदार्थों को (अरंकृताः) अलंकृत अर्थात् सुशोभित किया है (तेषां) आप ही उन पदार्थों के रक्षक हैं इस से उनकी (पाहि) रक्षा कीजिए और (हवं) हमारी स्तुति को (श्रुधि) सुनिए।"

यहां पर आपने 'पाहि' का अर्थ 'पालन' करना लिखा है।

यदि दुर्जन तोष न्याय से 'पान' का अर्थ पीना भी मान लिया जाय, तब भी ऋषि के इन शब्दों से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती। आपके ठाकुरजी को भोग लगाने में तो ठाकुरजी के मुंह आदि अंग होते हैं यहां तो ऋषि दयानन्दजी ने लिखा है "सर्वात्मा से पान करो"।

यहां परमात्मा के मुंह और मूर्त्ति की कल्पना कैसे हो सकती है?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव आपका आक्षेप व्यर्थ है ।

आक्षेप—पृष्ठ १३-१४ पटेला पूजन—आर्य समाज में पटेले का पूजन विस्तृत रूप से लिखा है ।

........इस के विषय में स्वामी दयानन्द जी वेदमन्त्र का उद्धरण देकर जो अर्थ करते हैं उसको हम ज्यों का त्यों यहां पर उद्धृत करते हैं ।

घृतेन सीता मधुना...यजु० १२-७०

सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जलवायु दुग्ध पराक्रम सम्बन्धी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो, पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से युक्त करेगा, इस हेतु से जल बार २ वर्त्तो।

...आर्य समाजी पटेला पूज कर भी कह देते हैं कि हम मूर्ति पूजा नहीं करते ।

उत्तर—यहां उपासना का वर्णन नहीं वरन् कृषि का वर्णन है। इस मन्त्र का देवता भी 'कृषि' है। पटेला से ऋषि दयानन्द जी का अभिप्राय खेत में हल चलाने से उत्पन्न हुई उस गहरी लकीर का है जिस में बीज बोया हुआ उगता है क्यों कि यह अर्थ मन्त्र में विद्यमान सीता शब्द का है और सीता शब्द का अर्थ हल या सुहागा हो ही नहीं सकता जैसा कि—'सीता लाङ्गल पद्धतिः' (अमरकोश १६-१४) ।

अर्थात्—सीता यह एक नाम हल रेखा का है।*

---

*चतुर्वेद भाष्यकार प० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ भी लिखते हैं—(सीता) काठ की पाटी फाली या हल से विदीर्ण भूमि । यजुर्वेद भाष्य प्रथम खण्ड द्वितीया वृत्ति पृष्ठ ५०३) ।

[डा० माताप्रसाद गुप्त एम० ए० डी० लिट्० अध्यापक हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय, अपनी पुस्तक 'तुलसी' पृष्ठ ६४ (सन्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी को ऋषि दयानन्द जी ने 'पटेला' शब्द से वर्णन किया है। आपने अपने मन से मनमाना 'लकड़ी का सुहागा' अर्थ निकाल लिया।

ऋषि दयानन्द जी के लिखे हुए मन्त्र के नीचे के भावार्थ को आपने चुरालिया है जिस से उनका तात्पर्य स्पष्ट होता है वह यह है—

सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथ्वी को अन्न से सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथ्वी को भी संस्कार युक्त करें।

इस भावार्थ में स्पष्ट तया "पृथ्वी को भी संस्कार युक्त करें" लिखा है, अब पटेले का अर्थ सुहागा कैसे हो सकता है ?

आपके माननीय भाष्यकार वाममार्गी श्री महीधराचार्य इस मन्त्र का अर्थ लिखते हैं:—

लाङ्गल पद्धति (कूँड़) को मधुरघृत से सींचे। इस कूँड़ को विश्वेदेव और मरुतों ने स्वीकार किया है। हे कूँड़ तूं अन्नवती हो कर दूध दही घी से दिशाओं को पूर्ण करती हुई दुग्ध आदि के साथ हमारे अनुकूल हो।"

इतने पर भी यदि आप यह कहें कि पटेले पर घी जल डालना ही उसकी पूजा है तो क्या कूँड़ में जल डालना शिवलिंग की पूजा है ?

आक्षेप—छुरा पूजन—स्वामी दयानन्द जी ने वेद मन्त्रों के प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि आर्य समाजियों को नाई का छुरा (उस्तरा)

१९४६ ई० साहित्यकुटीर, प्रयाग से प्रकाशित प्रथम संस्करण में लिखते हैं—वैदिक साहित्य में 'सीता' शब्द का प्रयोग साधारणतः हल से बनी हुई रेखा के लिये हुआ है।·····किन्तु उनके साथ भी 'रामायण' की ज्ञात कथा का कोई प्रसंग नहीं आया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजना चाहिये संस्कार विधि के चौल कर्म में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—

ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि।

इस मन्त्र से छुरे की ओर देख कर।

यहां इस मन्त्र का अर्थ नहीं लिखा अर्थ इस का यह है—छुरे! तू विष्णु की दाढ़ है।"...

अन्य कोई अर्थ हो ही नहीं सकता।

उत्तर—ऋषि दयानन्दजी ने अपनी संस्कारविधि 'चूड़ाकर्मप्रकरण' में लिखा है—ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि" (मं० ब्रा० १-६-४। गोभि० २-८-१०-१७) इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

यहां पर ऋषि ने कोई अर्थ नहीं किया है। उन्हों ने केवल गोभिल गृह्यसूत्र का उद्धरण रख दिया है। अर्थ तो आप करते हैं और आक्षेप स्वामी जी पर या आर्य समाजियों पर करते हैं, यह कहां की सभ्यता है?

इस का अर्थ तो आपने किया है इसलिए आप को सम्मति दी जाती है कि यदि छुरा विष्णु की दाढ़ है तो अशुद्ध असभ्य भग-लिङ्ग की पूजा त्याग कर छुरा का पूजन कीजिए। लिङ्ग से तो यह अच्छा रहेगा। बाल भी बनालो, सवेरे पूजा करके मोहनभोग भी खालो। एक पन्थ दो काज।

देखिये इस का अर्थ होगा—'यज्ञो वैविष्णु" (शतपथ ब्रा० १-२-१३) विष्णु नाम यज्ञ का है और "दंश्यतेऽनेनेतिदंष्ट्र:" जिस से काटा जावे उसका नाम दंष्ट्र है अतएव अर्थ हुआ 'छुरा यज्ञ में वस्तुओं को काटने का साधन है।'

आपका 'पुराण' छुरी और कुद्दाल की अवश्य पूजा बतलाता है—

सर्व सत्वांग भूतासि सर्वाशम निवारिणी।
छुरके छुरमां नित्यं शान्ति यच्छ नमोस्तुते॥

(भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अ० १३८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—सारे प्राणियों की अंगभूत है, सारे विघ्नों की दूर करने हारी है, हे छुरी ! मेरी रक्षा कर, मुझ को नित्य शान्ति प्रदान कर तुम को नमस्कार है।

तोष्य कर्म करा सर्वे कुद्दालानिच पूजयेत् ॥ ३६ ॥

(भविष्यपुराण उत्तर पर्व अध्याय १२७)

अर्थात् सारे काम करने वालों को संतुष्ट करे और कुद्दाली को पूजे।

आक्षेप—ओं शिमोनामासिस्वधितिस्तेपिता नमस्ते मा मा हिᳩसीः। यजु० ३ मं० ६३

हे छुरे ! तू कल्याण कारी है अच्छे लोहे का बना हुआ है। तुझे नमस्ते करता हूं तू इस बच्चे को मत मार

यहां पर छुरे की प्रशंसा और उस को नमस्ते करना और छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू इस बच्चे को मत मार, क्या अब भी छुरे का पूजन सिद्ध नहीं हुआ। (पृष्ठ १६)

उत्तर—ऋषि दयानन्द जी ने 'संस्कार विधि' में केवल मन्त्र देकर यह लिखा है कि 'इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे।

आपने इस मन्त्र का यहां अर्थ नहीं किया है। आप अपने यजुर्वेद भाष्य में इसका अर्थ लिखते हैं—"हे जगदीश्वर और उपदेश करने हारे विद्वन् ! जो आप (स्वधितिः) अविनाशी होने से वज्र मय (असि) है। (ते) आपका (शिवः) सुख स्वरूप विज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं। आप के लिये मेरा (नमः) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो, तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिᳩसीः) मृत्यु से युक्त कीजिए। और मैं आप को (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (प्रजननाय) सन्तानोत्पादन करने (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम २ पुत्र आदि वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्याय)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिए आप के आश्रय से सब दुःखों को (निवर्त्तयामि) दूर करता वा कराता हूँ।

आप को उचित था कि ऋषि दयानन्द जी के इस अर्थ पर आक्षेप करते पर आपने जो अर्थ किया है वह वाममार्गी महीधर का अर्थ है, इसलिये छुरे को नमस्कार का उत्तर आप को देना पड़ेगा ?

श्री महीधराचार्य का अर्थ—"शिवो नामेति लोह क्षुरमादायेति। हे क्षुर त्वं नाम नाम्ना शिवः शान्तोसि स्वधितिः वज्रं ते तव पिता। ते तुभ्यं नमो ऽस्तु मामा हिंसी"।

अर्थात्—शिवो नामासि०' यह कह कर लोहे के छुरे को ले (और कहे) हे छुरे तू नाम से शिव=शान्त है। वज्र तेरा पिता है। तुम को नमस्कार हो। मुझे मत मार।

ऋषि दयानन्द तो कहें हे जगदीश्वर ! आप मेरे पालन करने वाले हैं" और आप के माननीय भाष्यकार वाममार्गी श्री महीधराचार्य जी कहें "हे छुरे तुम को नमस्कार हो, मुझे मत मार।"

कहिये कौन छुरा (उस्तरा) पुजवाता है आप या आप के गुरु वाममार्गी महीधर या ऋषि दयानन्द जी ?

इस प्रश्न को देख कर पता चलता है कि आप (श्री कालूराम जी) या तो नास्तिक हैं या आपने मीमांसा दर्शन का स्वाध्याय नहीं किया है।

आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व आपके सरीखे नास्तिकों ने प्रश्न किया था जिस की चर्चा मीमांसा दर्शन में है और श्री सायणाचार्य जी ने अपने ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात, में इसी प्रश्न को उठा कर उत्तर दिया है। पाठकों के सम्मुख दोनों को रख देता हूँ।

प्रश्न—'ओषधे त्रायस्वैन मिति मन्त्रो दर्भ विषयः' स्वधिते मैनं हिंसीरिति क्षुर विषयः शृणोतग्रावाण इति पाषाण विषयः। एतेषु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचेतनानां दर्भ क्षुर पाषाणानां चेतनवत् सम्बोधनं श्रूयते। ततो द्वौ चन्द्रमसाविति वाक्यवद् विपरीतार्थ बोधकत्वात् अप्रामाण्यम्, अस्योत्तरम् ओषध्यादि मन्त्रे चेतना एव तत्तदभिमानि देवता तेन तेन नाम्ना सम्बोध्यन्ते।

भाषार्थ—हे औषधे! इसकी रक्षा कर, यह मन्त्र दर्भ के विषय में में। हे स्वधिते इसको कष्ट न हों, यह मन्त्र क्षुर विषयक है, पत्थर सुनें यह मन्त्र पत्थर विषक है। इन मन्त्रों में चेतन के समान सम्बोधन देखा जा रहा है। परन्तु जैसे दो चन्द्रमा कहने से विपरीत अर्थ का बोध होने के कारण इस वाक्य की प्रामाणिकता नहीं है उसी प्रकार जड़ को सम्बोधन करना भी अयुक्त है। इसका उत्तर श्री सायणाचार्य जी देते हैं कि औषध्यादि मन्त्रों में जड़ औषधि आदि के सम्बोधन से उन पदार्थों के अभिमानी चेतन देवता × का सम्बोधन ग्रहण होता है। अर्थात् जड़ का सम्बोधन नहीं समझना किन्तु उसके ग्रहण करने वाले चेतन देवता का ग्रहण होता है। अत्र कर्म काण्ड पक्ष में मन्त्र का अर्थ यों हुआ—

'हे क्षुर अर्थात् क्षुराभिमानी नापित तेरा नाम शिव है। स्वधिति (छुरा) + तेरा पालक है अर्थात् छुरे से तेरी जीविका है इसलिये इसको घाव न लगे।

× अभिमानी देवता मन्त्र में जिस का वर्णन हो वही मन्त्र का देवता होता है। मन्त्र में वपन का वर्णन है इसलिए क्षुर से क्षुर के अभिमानी नापित का ग्रहण होता है।

+ देखो, महीधर भाष्य अध्याय ४ मन्त्र १ जिस में 'स्वधिति' का अर्थ क्षुर किया गया है। पिता पालकः पालयिता ऋ० १-३१-१० श्री सायणाचार्यः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्षेप—(पृष्ठ १६-१७) स्वामी दयानन्द जी संस्कार विधि में लिखते हैं कि—

'ओं स्वधिते मैन थ्वं हि थ्वं सीः' यजु० ४-१।

हे तेजधार वाले छुरे इस बच्चे को मत मार।

छुरे की प्रशंसा और उससे नमस्ते करना और बार बार यह प्रार्थना करना कि इस बच्चे को मत मार क्या यह छुरे की पूजा नहीं है ?...

उत्तर—ऋषि दयानन्द जी ने यहां इस मन्त्र का अर्थ नहीं किया है इस लिए आपका आक्षेप वृथा है। आपने स्वयं अर्थ किया है इस लिए इसका उत्तर दायित्व आपके ऊपर है। ऋषि दयानन्द जी अपने भाष्य में लिखते हैं:—(ओषधे) सोमाद्योषधिगणः (त्रायस्व) त्रायताम्। (स्वधिते) रोग नाशने स्वधितिर्वज्रवत् प्रवर्तमानः। (स्वधितिरिति वज्रनामसु पठितम् निघण्टु २।२० (मा) निषेधार्थे। एनम्। यजमानं प्राणिसमूहंवा। (हिथ्वंसीः) हिंस्यात्। अत्र लिङर्थे लुङ्।

[अयं मन्त्रः शतपथ ब्रा० ३।१।१।११२।३।१।२-१० व्याख्यातः]

अर्थात् जैसे सोमलता आदि औषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कर। (स्वधिते) रोगनाश करने में वज्र के समान होकर (एनम्) इस यजमान वा प्राणीमात्र को (मा हिथ्वंसिः) कभी मत मार।"

आप को उचित था कि इस अर्थ पर आक्षेप करते, पर आपने छलकपट से काम लिया है। आपने जो अर्थ किया है वह आपके गुरु वाममार्गी श्री महीधराचार्य का है। 'ओषधे त्रायस्व इत्यादि का समाधान जैमिनि मुनि ने अपने 'मीमांसा दर्शन' में किया है सो सुनिऐ—

अभिधानेऽर्थवाद इति। असतोऽर्थस्याभिधाने वाक्ये गौणत्वार्थस्योक्तिद्रष्टव्या। तद् यथा चत्वारो होतृ अध्वर्य उद्गातृ ब्रह्मणोऽस्य कर्मणः शृङ्गाणि। प्रातः सवनादयस्त्रयः पादाः। पत्नी यजमानौ द्वे शीर्षे गयत्र्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त छन्दांसि हस्ताः। ऋग्वेदादिभिस्त्रिभिर्वेदैस्त्रेधा बन्धनं। कामान्वर्षतीति वृषभः। रोरवीति स्तोत्र शस्त्रादि शब्दान् पुनः करोति। महोदेवः सोऽयं प्रौढो यज्ञ रूपो देवो मर्त्यांना विवेशति।

लोकेऽपि गौण प्रयोगा दृश्यन्ते चक्रवाकस्तनी हंसदन्तावली काशवस्त्रा, शेवलकेशिनी इत्येवम् नद्याः स्तूयमानत्वात् एवम् औषधे त्रायस्व शृणोत ग्रावाण इत्यादि अचेतन सम्बोधनानि स्तुतिपरत्वेन योजनीयानि। यस्मिन् वपन ओषधिरपि त्रायते तत्र पवन कर्त्ता त्रायते इति कि मुवक्तव्यम्। तथा ग्रावणोपि प्रातरनुवाकं शृणवन्ति किमुत विद्वांसो ब्राह्मणा इत्यामन्त्रणाभिप्रायः॥"

'अविद्यमान् वचनाच्च' इस सूत्र में 'चत्वारिशृंगा' इस मन्त्र पर यह शङ्का उठाई गई है कि चतुः शृगादि से युक्त कोई भी यज्ञ का साधन नहीं है। इससे मन्त्रार्थ का बोध नहीं होता, किन्तु केवल उच्चारण से मन्त्र का अदृष्टार्थ प्रयोजन है इस सूत्र का उत्तर आगे (अभिधाने अर्थवाद इति) इस सूत्र मे दिया है अर्थात् मन्त्र के अर्थ का बोध न होता हो तो मन्त्र में गौणार्थ लेना चाहिए जैसे यज्ञ के चार सींग का जहां कथन है वहां, होता, अध्वयु, उद्गाता और ब्रहा करना चाहिए इत्यादि लोक में भी गौण प्रयोग देखा जाता है जैसे नदी के वर्णन में नदी को चक्रवाकस्तनी (चक्रवाक जिस के स्तन हैं) हंसदन्तावली (हस जिसके दांतों के कतार हैं) काशवस्त्रा, (काशही जिसके वस्त्र हैं) शेवल केशिनी (सेवार जिसके बाल हैं) कहते हैं।

अर्थात् नदी जड़ है इसमें चेतन के गुण का आरोप करके स्त्री रूप में उसका वर्णन चेतनवत् किया गया है। इसी प्रकार 'ओषधेत्रायस्वैनः' इस मन्त्र में भी गौणी प्रयोग है अर्थात् दर्भ क्षुर प्रस्तर के ग्रहण वाले चेतन में, गुण का आरोप उनमें करके उन्हें सम्बोधित किया जाता है। यह वेद की शैली है। जब चेतन का आरोप होता है तो ऊपर वर्णित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी के समान चेतन के सब गुणों (सुनने नमस्कार आदि) का प्रयोग जड़ में होना चाहिए।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऐसा आरोप मिलता है।

"तं तपोऽब्रवीत्। प्रजापते तपसा वै श्राम्यसि। अहमु वै तपोस्मि। मांनुयजस्व। तं श्रद्धा अब्रवीत्। प्रजापते तपसा वै श्राम्यसि। अहमु वै तपोस्मि। मांनुयजस्व तं श्रद्धा अब्रवीत्। प्रजापते श्रद्धयावै श्रोम्यसि अहमुवै श्रद्धास्मि। मांनुयजस्व। तं सत्यं अब्रवीत्। त मनोऽब्रवीत् इत्यादि" (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-१२।३)"

अर्थात्—तपने प्रजापति से कहा कि हे प्रजापते! आप तप के साथ ही श्रम करते हैं। मैं ही तप हूं मेरा भजन करो।

श्रद्धा ने कहा, हे प्रजापते! श्रद्धा के साथ आप श्रम करते हैं, मैं ही श्रद्धा हूं, मेरा भजन करो।

सत्यने प्रजापति से कहा, मन ने कहा, इत्यादि अनेक उदाहरण तप श्रद्धा आदिकों को चेतनवत् वर्णन करते हैं।

उपनिषदें आत्मवाद हैं। इनमे प्राणों के अनेक सम्वाद हैं।

आक्षेप—पृष्ठ १७"संस्कारविधि के समावर्त्तन प्रकरण में—"

ओं प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातम्। पार० कां० २ क० ६

इस मन्त्र से जूते से प्राथना की जाती है कि 'हे जूता! तुम शरीर के आधार हो, सब भूतल पर मेरे पावों की रक्षा करो।'

जो आर्य समाजी जूते से भी रक्षा करने की प्रार्थना करे और फिर वह यह कहे कि हम मूर्त्तिपूजा नहीं करते तो इससे झूठा संसार में क्या कोई अन्य मनुष्य हो सकता है? ...

उत्तर—ऋषि दयानन्द जी ने संस्कार विधि 'समात्तन प्रकरण' में इस का अर्थ नहीं किया है। उन्होंने केवल लिखा है··इस यन्त्र से उपानह, पादवेष्टन, पगरखा और जिसको जोड़ा भी कहते हैं धारण करें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां पर क्या आक्षेप हो सकता है ? आपने अर्थ किया है इसलिए जूता पूजक आप हैं।

इसका तो अर्थ है—"यह मज़बूत जूतिएं आदि पैर की रक्षा के लिए पहनता हूँ।"

ब्रह्मचारी जूता पैर में पहन कर चलता है, क्या यह जूते की पूजा है ? क्या जिन वस्तुओं की पूजा होती है उन की यही दशा की जाती है ?

आक्षेप—पृष्ठ १७"...जिस वेद में मूर्त्तिपूजन ठसाठस भरा है उसको प्रमाण कोटि में लेकर क्या कभी आर्य समाजियों का विजय होगा। जिन को यह घमण्ड है कि वेद में मूर्त्तिपूजा नहीं है वे गल्ती पर हैं।"

उत्तर—आपने मूर्त्तिपूजा पर जहां २ शास्त्रार्थ किया वहां २ आप को मुंह की खानी पड़ी थी। वेदों में कहीं भी मूर्त्तिपूजा नहीं है। आप स्वार्थ भ्रम में हैं।

आक्षेप—"वेद में तो स्थान २ में मूर्त्तिपूजा मिलती है पाठकों की जानकारी के लिए हम कुछ प्रमाण नीचे उद्धृत करते हैं। पढ़ने का कष्ट उठावें।"

शंकर पूजन—"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ यजु० अ० ३ मं० ६०

हम तीन नेत्र वाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्य गन्ध से युक्त और धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ाने वाला है जिस से कि उसकी कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बन्धन से छूटें, अमृत से न छूटें।"

उत्तर—आपने 'त्र्यम्बकं' का अर्थ किया है 'तीन नेत्र वाले रुद्र' पर आपका यह अर्थ, निरुक्त, ब्राह्मणादि के सर्वथा विरुद्ध है। यही मन्त्र निरुक्त १३।३८, शतपथ, ब्राह्मण २।६।२।१२।२४ में भी आया है। इनमें भी ऐसा अर्थ नहीं है।

'त्र्यम्बक' इस में दो शब्द हैं, त्रि+अम्बक। आप कहते हैं जिन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तीन नेत्र हैं। पता नहीं है आप किस आधार पर 'त्र्यम्बक' का अर्थ इस प्रकार करते हैं।

आप तो 'घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा वारासभ रोहणम्'

येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषोभवेत्"।

के अनुकूल प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं और वेद क्रान्त दर्शी महर्षि दयानन्द जी पर कीचड़ उछालते हैं।

पर आपके पुराणों में शिव को पांच मुँह वाला कहा गया है तब उन्हें १० आंखें होनी चाहिए, तीन ही क्यों ? यदि आप कहें कि प्रत्येक में तीन २ आंखें हैं तो फिर १५ आखें होनी चाहिए, तीन ही क्यों ?

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्री कृष्ण जन्म खण्ड ३६ में लिखा है "राधिका ने श्री कृष्ण जी से पूछा कि शिवजी पंचमुख कैसे ? तब कृष्ण जी ने कहा कि शिवजी ने ६० हजार वर्ष तक तप किया मैं सामने गया। मेरे सुन्दर शरीर को देख कर प्रेम विह्वल हो कर रोने लगे और बोले कि एक मुख से मैं आपकी क्या स्तुति करूँ। इस प्रकार बार २ बोले तो उन्हें चार मुख और हो गए और एक में तीन २ आखें हो गईं।'

अब मैं आप से पूछता हूं कि ये ईश्वर कैसे हुए जब श्री कृष्ण की कृपा से इन्हें मुख मिले।

आपके "शिव पुराण धर्म संहिताध्याय १०" में दारुक वन में दिगम्बर शिवजी का देव पत्नियों से मैथुन, 'शिव पुराण-शतरुद्र संहिता १६" में महानन्दा वेश्या से सम्भोग करना लिखा है। ऐसे कामी, व्यभिचारी शिव के पुजारी आप ही हो सकते हैं आर्य नहीं।

'त्र्यम्बक' का वास्तविक अर्थ सुनिए त्र्यम्बक=त्रि+अम्बक।

"अम्ब एव अम्बकः" अम्ब नाम पिता का है। स्वार्थ में 'क' प्रत्यय है। 'अम्बा' शब्द का प्रयोग माता अर्थ में आजकल भी विद्यमान है। अमरकोष में लिखा है-'अम्बा माता ऽथबालास्यात्' अम्बा नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता का है। पाणिनी सूत्र में 'अम्बा' आया है। 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७-३-१०७'।

अम्बार्थ पद से मात्रर्थ का ग्रहण है, हे अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! इत्यादि। अम्बा का पुल्लिङ्ग अम्ब होगा। इससे सिद्ध होता है कि 'अम्ब' नाम 'पिता' का है। अतः त्रयाणां लोकानां त्र्यम्बकः पिता त्र्यम्बकः' तीनों लोकों का जो पिता वह त्र्यम्बक। यद्वा अम्बगतौ। 'त्रींल्लोकान् अम्बति गच्छति व्याप्नोति जानाति वा त्र्यम्बकः' तीनों लोको में जो व्यापक हो। यद्वा—तीनों लोकों वा कालों को जानता हो। यद्वा— 'अमगतौ। अमति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिषु कालेषु एकरसं ज्ञानं यस्यतम् 'तीनों कालों में एक रस ज्ञान युक्त।

महर्षि दयानन्द जी अपने 'यजुर्वेद भाष्य' में लिखते हैं :—

'(त्र्यम्बकम्) उक्तार्थं रुद्रं जगदीश्वरम्=रुद्र रूप जगदीश्वर।"

पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ, वेदाचार्य अपने 'त्रिदेव-निर्णय' द्वितीया वृत्ति पृष्ठ १८६ में लिखते हैं '(त्र्यम्बकम्) त्रिलोक-पिता।"

पं० जयदेव शर्मा. विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ अपने 'यजुर्वेद भाषा-भाष्य' प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४०१ में लिखते हैं :— '(त्रि-अम्बकम्) तीन शक्तियों से सम्पन्न।'

शास्त्रार्थ—महारथी पं० मनसाराम जी 'वैदिक-तोप' अपने 'पौराणिक पोलप्रकाश' प्रथम भाग, प्रथम संस्करण पृष्ठ ११६ में लिखते हैं :—

"......यहां पर त्र्यम्बक शब्द से परमेश्वर का ही ग्रहण है, किसी कल्पित पौराणिक देवता का नाम नहीं है। अग्नि चांद और सूर्य ये तीनों परमात्मा के चक्षु वत् अर्थात् सब संसार के देखने में सहायक है। इसलिये परमात्मा को त्र्यम्बक कहा गया है। इस बारे में महाभारत में भी लेख आता है कि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो देव्योयदा चैनं भजन्ते भुवनेश्वरम् । द्यौरापः पृथिवीचैव त्र्यम्बकस्तु नमः स्मृतः ॥ महा० द्रोण० अ० २०२ श्लो १२८ ।

भावार्थ—तीन देवियां जब कि उस परमात्मा को सेवन करती हैं। द्यौलोक, जल तथा पृथ्वी, अतः परमात्मा को त्र्यम्बक कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा के हमारी तरह से शारीरिक नेत्र नहीं हैं अपितु लाक्षणिक रूप से सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि को ही नेत्रवत् वर्णन किया है। अतः कहीं त्र्यम्बक आता है तो कहीं सहस्राक्षः आता है। अतः सिद्ध है कि परमात्मा निराकार है।

श्री सायणाचार्य जी 'त्र्यम्बकं यजामहे' (ऋ० ७ ५६ १२) इस ऋचा के भाष्य में 'त्र्यम्बक' शब्द का अर्थ 'त्र्यारुध ब्रह्मविष्णुरुद्राणां अम्बकं पितरम्' ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का पिता करते हैं।

अतः आपके पूर्वाचार्य भी आपके अर्थ से सहमत नहीं हैं।

आगे आप अपनी पुस्तिका में अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त २ मंत्र ५, ६, १५, १६ के 'मुखायते पशुपते यानि···मन्त्रों से शङ्कर का वर्णन लिखते वे, पर वहां शंकर का कोई वर्णन नहीं है वहां तो रुद्र ईश्वर के भव और शर्वरूप का वर्णन है।

पृष्ठ २१ में आप अथर्ववेद काण्ड १७, सूक्त १ मन्त्र २२, २३ में 'उद्यते नम उदायते नम·····' मन्त्र से 'सूर्य पूजन' का वर्णन करते हैं, परन्तु परमात्मा का वर्णन है। आप का अर्थ भी अशुद्ध है। वहां तो वर्णन है—"हे परमेश्वर! (उद्यते नमः) सूर्य के समान हृदय में कोमल प्रकाश से उदित होते हुए तुझे नमस्कार है।·····"

शतपथब्रा० १०,६,१,६, में स्पष्ट लिखा है कि सूर्य, चन्द्रादि प्रतीकों में ब्रह्म की उपासना करना महापाप है। पृष्ठ २२ में आप यजु० अ० ३१ मन्त्र ६ 'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रत···' से 'विष्णु पूजन' सिद्ध करते है। परन्तु इस मन्त्र में कहीं 'विष्णु' शब्द भी नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां तो परमात्मा का वर्णन है। यहां आपके उस पौराणिक विष्णु का वर्णन नहीं है जिस ने वृन्दा (तुलसी) का सतीत्व नष्ट किया और उसके पतिजलन्धर (शङ्ख चूड़ को मारा, देखिये इस का पूरा वर्णन आपके पद्म पुराण, उत्तर खण्ड अ० कार्तिक महात्म्य तथा देवी भागवत ९-१६ से २५ अध्याय तक।

विष्णु का वास्तविक अर्थ होता है—'विष्लृव्याप्तौ। विश प्रवेशने। और विपूर्वक अशू व्याप्तौ संघाते च। इन धातुओं से इस शब्द की सिद्धि होती है। पूर्वाचार्य ऐसा ही मानते आये हैं तब इसका अर्थ हुआ कि 'जो सब जगह व्याप्त हो अथवा जिस का प्रवेश सर्वत्र हो उसको 'विष्णु कह सकते है। यह अर्थ सम्पूर्ण रूप से तो केवल परमात्मा ही में घट सकता है। इस हेतु परमात्मा में यह शब्द मुख्य है और सूर्य और यज्ञादि में गौण है।

पुनः पृष्ठ २२ में आप लिखते हैं—"जगन्नाथ जी के पूजन के विषय में वेद लिखता है कि—

'अदो यद्दारुप्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम। तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३०॥" ऋ० ८।१३।१०

विप्रकृष्ट देश में वर्त्तमान पुरुष निर्माण रहित जो दारुमय पुरुषोत्तम शरीर समुद्र के तट में वर्तमान है उस शरीर का अवलम्बन वा उपासना करो जो किसी से भी हनन नहीं होता उस दारुमय देव की उपासना करने से अतिशय उत्कृष्ट वैष्णव लोक प्राप्त हो।" "यही बातें आप अपनी पुस्तक "आर्य समाज की मौत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १८३ में भी लिखते हैं।

उत्तर—यह मन्त्र ऋग्वेद संहिता, मण्डल १० सूक्त १५५ मं० ३ में है। पं० कालूराम जी शास्त्री के सदृश ही श्री गिरिजाकान्त चौधरी देव शर्मा ने मासिक पत्र "कल्याण" हिन्दू संस्कृति अंक वर्ष २४,गोरख-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुर, जनवरी १९५० ई०, संख्या १, पृष्ठ २५५ कालम २ में अपने "वर्णाश्रम की ऐतिहासिकता" शीर्षक लेख में लिखा है:—"आधुनिक पाश्चात्य लेखकों ने पुरीधामस्थ श्री जगन्नाथदेव की काष्ठ मूर्त्ति को बौद्ध-मूर्त्ति प्रमाणित करने का प्रयास किया है। यह भी युक्ति बताई जाती है कि जगन्नाथ देव की रथ यात्रा (विजय) बौद्ध-मूर्त्ति के रथ पर परिभ्रमण से ली गई है। परन्तु ये सब मत भ्रान्त हैं। ऋग्वेद में दारु ब्रह्म श्री पुरुषोत्तम-मूर्त्ति का स्पष्ट उल्लेख है—अदोयद्दारु··· ऋ० १०।१५५।३)।

अदः (दूर में) यत् (अपूरुषम्) (जो पुरुष द्वारा निर्मित नहीं है), दारु (काष्ठमय पुरुषोत्तमाख्य देव-शरीर), सिन्धोः (समुद्र के), पारे (तट पर), प्लवते (जल के ऊपर है), हे दुर्हण (स्तोता), तत् (वह), आरभस्व (अवलम्बन करो) तेन (उसके द्वारा), गच्छ परस्तरम् (उत्कृष्ट स्थान वैकुण्ठ) को प्राप्त हो।

'हे उपासक! दूर देश में समुद्र के तट पर जल के जो दारुब्रह्म की मूर्ति है, जो किसी मनुष्य से निर्मित नहीं है, उसकी आराधना करके उनकी कृपा से वैकुण्ठ को प्राप्त हो।

यहां दोनों लेखकों का मत भ्रांति पूर्ण है। इसी प्रकार कश्चित् स्वामी विष्वक् सेनाचार्य जी अपनी "वैदिक मूर्त्ति पूजादर्श" में तथा विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र अपनी "दयानन्दतिमिर भास्कर" तृतीय संस्करण पृष्ठ ४०० में ऐसे ही अर्थ करते है।

प्रथम मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि जगन्नाथ का मन्दिर कब बना और कब से इस वाममार्ग की प्रवृत्ति हुई।

भविष्य पुराण, तृतीय खण्ड अ० २० जगन्नाथ जी इंद्र से कहते हैं—

म्लेच्छ देशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपे नैव शासिताः। संस्कृताः शूद्र वर्णेन ब्रह्मवर्ण मुपागताः॥

शिखा सूत्रं समाधाय पठित्वा वेद मुत्तमम्। यज्ञैश्च पूजयामासु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देंव देवशची पतिम् ॥७३॥

दुःखितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वी पमुपागतः। स्तुत्यामाँ बोधयामास देव मंगल हेतवे ॥७४॥

शूद्र संस्कृतान्नं च खादितुं न द्विजोर्हति। तथा च शूद्रजनितैं र्यज्ञैस्तृप्तिर्न चाप्नुयाम् ॥

काश्यपे स्वगते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति। मम शत्रुवलिर्दैत्यः कलिपक्ष मुपागतः ॥

निस्तेजाश्च यथा हस्यां तथा वै कर्तु मुद्यतः।

म्लेच्छ देशोद्भवे म्लेच्छोः सांस्कृति तेन संस्कृता। भाषा देव विनाशाय दैत्यानां बर्धनाय च। आर्येषु प्राकृति भाषा दूषिता तेनवैं कृता। अतो मां रक्ष भगवन् भवन्तं शरणागतम् ॥"

अर्थात् मिश्र देश के म्लेच्छों को कश्यप ने शुद्ध किया वे शूद्र वर्ण से ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त हो गए शिखा, सूत्र रख कर उन्होंने वेद पढ़ा और यज्ञ द्वारा इन्द्र की पूजा की तब इन्द्र दुःखित होकर मेरे पास श्वेत द्वीप में आए और देवताओं के मंगल के लिए स्तुति करके मुझ को जगाया। उन्होंने कहा कि शूद्र के बनाये हुए अन्न को खाने से मैं तृप्त नहीं होता हूँ। कश्यप के स्वर्ग चले जाने पर मेरा शत्रु बलि ने कलि का पक्ष ग्रहण कर लिया है और जिस काम से जगन्नाथ जी ने इद्र से कहा कि आप बारहो आदित्य पृथ्वी पर जावें और मैं भी ससार की भलाई के लिए कलियुग में जन्म लूंगा। बारहो आदित्य पृथ्वी पर प्रवीण निपुण अभिज्ञ कुशल कृति सुखी निष्णात शिक्षित सर्वज्ञ सुगम सबुद्ध बुद्ध इत्यादि नामों से हों। धाता मित्र, अर्यमा, शक्र मेध प्रांशु भग विवस्वान पूषा सविता त्वष्टा विष्णु इत्यादि आदित्यगण ने बिहार देश में आकर जन्म ग्रहण किया। वेद निन्दा करके बौद्ध शास्त्रों को बनाया। देवताओं ने वेद लेकर उन मुनियों को दे दिया। वेद की निन्दा करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण वे देव कोढ़ी हो गए तब बौद्धरूप विष्णु के पास जाकर उन्हों ने स्तुति की। योग बल से विष्णु ने उनका कोढ़ नाश कर दिया। इस दोष के कारण वह बौद्ध तेज के कारण पूर्वार्ध से नेमिनाथ तथा उत्तरार्ध से बौद्ध हुआ। बौद्धराज के नाश के लिए लकड़ी और पत्थर के रूप में समुद्र के किनारे संसार के मंगल के लिये उत्पन्न हुआ, राजा इद्रद्युम्न ने स्वर्गलोक से आकर मन्दिर बनाया और मैं वहां पर गया ॥८८॥ यहां पर न तो वर्ण धर्म है और न वेदधर्म है। यहां पर यज्ञांश के प्रसाद की बड़ी महिमा है। योजन भर के भीतर यहां पर व्रतादि कुछ विधान नहीं है। जिसने याविनी भाषा बोली जिसने बौद्ध को देखा उस के पाप को यहां पर बैठा हुआ मैं नाश करता हूँ। मुझको देख कर मनुष्य कलिकाल में शुद्ध हो जावेंगे ॥९१॥*

ऊपर के अवतरण से पाठकों को अब भली भान्ति स्पष्ट हो गया होगा कि भविष्यपुराण के अनुकूल कलि में बौद्धकाल में जगन्नाथ की मूर्त्ति स्थापित हुई है और मन्दिर को इन्द्रद्युम्न ने बनवाया है।

अब यदि मान लिया जाय कि 'अदोयद्दारु···' इस मन्त्र का वही अर्थ है जैसा कि पं० कालूराम जी, पं० ज्वाला प्रसाद जी मिश्र तथा अन्य पौराणिक पण्डितों ने किया है तब तो उस मन्त्र का कलि में बनना मानना पड़ेगा जिसे कोई बुद्धिमान पुरुष स्वीकार नहीं कर सकता।

किसी भी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख घटना पश्चात् हुआ करता जैसा कि जैमिनी सूत्र में इसी पर प्रश्न उठाया है—"अनित्य संयोगान्मन्त्रानर्थक्यमितिकिं ते कृण्वन्ति कीकटेषु इति मन्त्रे कीकटो नाम जनपदः आम्नातः तथा च नैचाशाख नाम नगर प्रमगंदो नाम राजा

---

* पाक्षिक पत्र "पाखण्ड-खण्डिनी-पताका" काशी वर्ष १, मार्च १ सन् १९३५ ई०, अङ्क १६ तथा १४, पृष्ठ २

पुस्तकालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्येते अर्था अनित्या आम्नाता। तथा चसति प्राक् प्रयगंदाचायमन्त्रो भूतपूर्व मूति गम्यते।"

इस के उत्तर में—'उक्तश्चानित्य सयोग इति' जैमिनि ने यह सूत्र लिखा है—जिस का अर्थ यह है कि प्रथम पाद के अन्तिम अधि करण में अनित्य संयोग दोष का हमने परिहार कर दिया है। उन्हों ने उत्तर यह दिया है कि वेद के सब शब्द सामान्य हैं कोई विशेष पुरुष या घटना के बोधक नहीं हैं।"

इस जगन्नाथ जी के विषय में वेदक्रान्त दर्शी महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने "सत्यार्थ प्रकाश" एकादश समुल्लास में लिखते है।

"...दीनगृहस्थ और साधु संतों को लेके शूद्र और अन्त्यज पर्य्यन्त एक पंक्ति में बैठ जूठा एक दूसरे का भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते जाते हैं। 'महा अनाचार है।...और यह जगन्नाथ में वाममार्गियों ने भैरवीचक्र बनाया है क्यों कि सुभद्रा श्री कृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान में बैठाई है। जो भैरवी-चक्र न होता तो यह बात कभी न होती।...

अब मन्त्र का सत्यार्थ सुनिए। वास्तव में इस मन्त्र में न तो मूर्ति पूजा की आज्ञा है और नही जगन्नाथ या विष्णु आदि का नाम है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय 'अलक्ष्मीघ्नम्' अर्थात् "दारिद्र-नाश" है। इस मन्त्र में बतलाया गया है कि पुरुषों की दरिद्रता कैसे दूर हो सकती है। वेद कहता है कि जलयान के द्वारा दूर २ देशों की समुद्रयात्रा करने से पुरुष अपनी निर्धनता को नाश करके धन सम्बन्धी वृद्धि को प्राप्त हो सकता है। इसी विषय का इस मन्त्र में प्रतिपादन है।

अर्थ—रे दुर्भिक्ष देवते !(सिन्धों) नदी के (पारे) किनारे पर (अपूरुषं) पुरुष रहित (अदो) यहां से दूर देश में जो (दारु) शत्रु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल को विदारण करने वाला वा काष्ठमय नौकादि (अवते) तैर रही हैं (तद्) उस नाव को (आरभस्व) ले लो और ले कर उस नाव द्वारा (परस्पर) बहुत दूर २ जलीय देशों को प्राप्त हो। सागर आदि पार करने के लिए वायु या अग्नि-यन्त्रादि के बल से चलने वाले नाव, पोत (जहाज) का प्रयोग करें।

यदि आप कहें कि 'दारु' का अर्थ तो लकड़ी है, नाव कैसे किया गया तो यहां पर कार्य में कारण का प्रयोग है। ऐसे एक नहीं अनेक प्रयोग प्रदर्शित किए जा सकते हैं यथा यजुर्वेद ५-१० "उच्छ्रयस्व बनस्पते" में वनस्पति से बना दण्ड लिया गया है। (महीधर भाष्य)।

इस मन्त्र में जगन्नाथ जी के उच्छिष्ट ओदन और जगन्नाथ जी के मन्दिर पर उत्कीर्ण चौरासी आसनों से विषय भोग करती हुई स्त्री तथा पुरुषों की मूर्तियों का कहां वर्णन है ?

पं० माधवाचार्य शास्त्री, हिन्दी प्रभाकर ने भी अपने "पुराण दिग्दर्शन" ग्रन्थ* के पृष्ठ १७५-१७६ में इसी मन्त्र को दे कर जगन्नाथ जी की मूर्ति प्रदर्शित करने का वृथा प्रयास किया है। आप भी अपना उत्तर उपयुक्त समझ लीजिये।

पं० कालूराम जी अपनी पुस्तिका के अन्तिम पृष्ठ २३ में लिखते हैं—

गणपति पूजन—

नि षु सीद गणपते गणेषु, त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥७॥

ऋ० म० १० अष्ट० १० सूक्त ११२।

भगवन् गणपते ! आप देवगण में आकर बैठें, आपको ऋषि लोग कवियों में उत्तम कवि कहते हैं। आप के बिना कोई कार्य नहीं होता।

---

*संवत् २००६ में धर्मधाम, कमला नगर माधव पुस्तकालय देहली से प्रकाशित।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामर्क चित्र जो आप है आप का मैं अर्चन करता हूँ।"

उत्तर—आपने 'गणपति' का अर्थ सूण्डधारी गणेश को समझा है पर यह आप का भ्रम है। 'गणपति' का अर्थ ईश्वर हैं।

इस मंत्र का सत्यार्थ—"हे 'गणपते' समस्त गणों, जनों, वर्गों के, इन्द्रियादि गणों के पालक स्वामिन्! तू (गणेषु नि सुसीद) गणों के बीच में विराज (त्वाम्) तुझको (कवीनां) क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच (विप्र-तम आहुः) सर्व श्रेष्ठ विद्वान् कर्मकृत्, कुशल बतलाते हैं। (त्वाम् ऋते) तेरे बिना (आरे) क्या समीप क्या दूर (न किंचन क्रियते) कुछ भी नहीं किया जाता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान्! तू (महान्) महान्, पूज्य (अर्कम्) अर्चना योग्य, स्तुत्य (चित्रम्) आश्चर्य जनक, ज्ञानप्रद वेदमय ज्ञानराशि को (अर्च) प्रदान कर।"

उत्तर प्रदेशीय शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'गणेश' में स्पष्ट लिखा है कि यह आर्यों के देवता नहीं हैं।

मैंने भी 'गणेश का वास्तविक स्वरूप" शीर्षक लेख लिखा था जो मासिक पत्र "पारीक जयपुर, दिसम्बर १९४६ ई० मासिक पत्र "वैदिक धर्म" दिसम्बर १७४७ ई० पृष्ठ ४०१ से ४०४ तक में प्रकाशित हुआ। उस का खण्डन पं० दुर्गादत्त जी त्रिपाठी सम्पादक "सिद्धान्त" काशी ने "गणेश के वास्तविक स्वरूप की अवास्तविकता" शीर्षक लेख से साप्ताहिक पत्र "सिद्धान्त" वर्ष ७ अङ्क १. २. ३. में किया। इस की आलोचना पुनः मैंने "वेद और गणेश" शीर्षक से मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी वर्ष १ फरवरी १९४७ ई० अंक ५ पृष्ठ १२ से १७ तक में की! इस का पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने "सिद्धान्त" वर्ष १० अंक ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४० में "वेद और गणेश" में किया। इस का उत्तर मैंने "वेद और गणेश की प्रत्यालोचना शीर्षक लेख में किया है जो मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

13 FEB 1965
84
22 AUG 1966

BOOK POST

महा ... है
पर ...
... के,
इन्द्रि ... के
बीच ... बीच
(वि ... ाम्
... ते)
कुछ ...)
महान ... क,
ज्ञानप्र
... क
'गणे
... जो
मासि ... क
धर्म" ... ।
उस ... ी
ने "... से
साप्ता ... की
आलो ... का
"वेदवा... ... २९ से १७
तक में की ! इस का पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने "सिद्धान्त" वर्ष १० अंक ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४० में "वेद और गणेश" में किया। इस का उत्तर मैंने "वेद और गणेश की प्रत्यालोचना शीर्षक लेख में किया है जो मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी

Entered in Database
पुस्तकालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

BOOK POST

PRINTED MATTER

LIBRARIAN
GURUKULA KANGRI VISHWAVIDYAL
P.O. GURUKULA KANGRI
HARDWAR
DISTT. SHARANPUR(U.P.)

R15.3,KUS-A
25477

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar